मोहन राकेश और आधे-अधूरे नाटक का शिल्प विधान

*श्रीमती दीक्षा यादव

शोधपत्र-हिन्दी

आधुनिक हिन्दी साहित्य की महान विभूतियों में मोहन राकेश का स्थान सर्वोपरि है। मोहन राकेश ऐसे प्रभावी तत्वों के विनियोग से बने व्यक्तित्व के धनी थे, जिसमें दुर्निवार आकर्षण था, विचित्रता थी, विलक्षणता एवं प्रयोगधर्मिता थी। उन्होने साहित्य की जिस विधा पर भी लेखनी चलाई चाहे वह नाटक हैं, उपन्यास या कहानी है, उसमें उन्होने पूर्ण सफलता प्राप्त की। जिस प्रकार निराला जी अपनी रचनाओं में पूर्णरूप से अभिव्यक्त हुए है और रचनाओं के माध्यम से ही उनके व्यक्तित्व को जाना समझा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार राकेश को समझने के लिए उनका सम्पूर्ण साहित्य एक दर्पण है। मोहन राकेश के व्यक्तित्व का चित्रांकन उनके मित्र कमलेश्वर ने इस प्रकार किया है :—"अगर कहीं ऐसा शख्स दिखाई पड़े जो सिल्क की निहायत लम्बे कालर वाली कमीज पहने हो, उसके कफ कोट की बाँहों से छः अंगुल बाहर निकले हो और उनमें एकदम पुरानी चाल के कफ बटन हो, जिसकी टाई की गांठ ढीली मुठठी की तरह गर्दन में बेतरतीबी से कसी हो, कीमती कपड़े की पेन्ट जैसे पहनने वाले से पनाह मांग रही हो, और गोल्ड फलैक की सिगरेट जला जलाकर खा रहा हो और सभी जगहों में फैंकता जा रहा हो और बात—बात पर आसमान फाड़ ठहाके लगाता हो और लेखक के बजाय किसी बार का रईस पर पहली नजर में गावदी प्रापराइटर लगता हो तो समझ लिजिए कि वह राकेश है।[1]

मोहन राकेश—निहायत खूबसूरत, गौरवर्ण, निष्कपट चेहरा, घुंघराले बाल, सुरमई आँखे आदि गुणों ने उनके व्यक्तित्व को निखारा। उनका जीवन उन्मुक्तता का प्रतीक था। उनका जीवन ऊपर से देखने में जितना अस्थिर, अव्यवस्थित था, अन्दर से उनका रचनात्मक व्यक्तित्व उतना ही सुलझा हुआ, अनुशासनबद्ध और व्यवस्थित था। व्यक्तित्व के बारे में विभिन्न विद्वानों के अलग—अलग विचार हैं। प्रसिद्ध विद्वानों ने व्यक्तित्व से सम्बधित विभिन्न परिभाषाएँ दी है। उसकी रचना संसार, उसके स्वयं के जीवन, विचारधारा और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। मोहन राकेश के साहित्य का अध्ययन करने से यह तथ्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। मोहन राकेश के ज्यादातर पात्र उनके अपने परिवेश के ही है। साहित्यकार तो हमारे समाज में अनेक मिल जाते है, परन्तु साहित्य को अपने ढंग से जीने वाले साहित्यकार विरले ही मिलते है। एक ऐसी ही शैली के साहित्यकार मोहन राकेश है। हिन्दी की सृजनात्मक समृद्धि में इनके अमूल्य योगदान की अनदेखी असम्भव है। इनमें जीवन की यथार्थ को अभिनवता में साथ पुननिर्मित करने की पूरी क्षमता है। इनकी अभिव्यक्ति शैली में पाठकों को बांध लेने की अद्भूत शक्ति है। यहाँ प्रस्तुत है। उनका संक्षिप्त जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतियों और उपलब्धियों का विवरण।

व्यक्तित्वः—

(1) जन्म और जन्म स्थानः—हिन्दी नाटक को नये आयाम प्रदान करने वाले मोहन राकेश का जन्म अमृतसर (पंजाब) का गण्डा वाली गली में 8 जनवरी 1925 ई0 को हुआ था।[5] घर की आर्थिक अवस्था ठीक नही थी तथा वातावरण भी सुखद नही था। राकेश के शब्दों में "घर में शीलन रहती है। नालियों में बदबू उठती है। सीढ़ियां अंधेरी है। घर में दम घुटता है। अकसर गली में भाग जाता हूँ। पकड़कर लाया जाता हूँ, फिर भाग जाता हूँ, घर में बन्द रखा जाता हूँ। घर में बन्द रखा जाता हूँ, रो—रो कर बीमार हो जाता हूँ।'[6]

(2) पारिवारिक पृष्ठभूमि—मोहन राकेश के बचपन का नाम मदनमोहन गुगलानी था। मोहन राकेश की माता का नाम बचन कौर था और उनका स्वभाव कोमल एवं मृदु था। इनके पिता का नाम करमचन्द गुगलानी था। जिनका पेशा वकालत था तथा फिजूलखर्च तथा शान—शौकत बनाये रखने वाले स्वभाव के व्यक्ति थे। करमचन्द गुगलानी जी अमृतसर के जागरूक कार्यकर्ता और साहित्यक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारी थे। मोहन राकेश के दादाजी वैष्णव धर्म से

* शोधार्थी-द्राविडियन विश्वविद्यालय, कुप्पम (आन्ध्र प्रदेश)

जुड़े हुए थे तथा इनके जन्म से पूर्व ही स्वर्ग सिधार गये थे। दादी मां का कठोर बंधन मोहन राकेश पर था। इनका परिवार पुरातन पन्थी एवं अन्धविश्वासी विचारधारा से लिपटा हुआ कट्टर सनातनी था।

बाल्यकालः—बचपन में राकेश मोहन बहुत ही संकोची एवं शर्मीले थे। किसी से ज्यादा बात नहीं करते थे। परिवार के सदस्यों का विरोध नहीं कर सकते थे। घर की चार दिवारी से निकलना उनके लिए निषेध था। घर के निषेधों, बधंनों—घुटन तथा एकाकी जीवन ने उन्हे कुछ कल्पनाशील भावुक, आलोचक तथा विद्रोही बना दिया। उनकी अस्थिर चितवृति और यायावरी जीवन के लिए पूर्णत उतरदायी उनका बचपनकालीन भोग बधंन है। घर के वातावरण एवं पारिवारिक परिवेश के बारे में उन्होंने लिखा है—चमगादड़, भूतप्रेत, डायन, कंजर, सिंह, पुरूष, सहेलियों के टोने माने का इतना डर दिखाया जाता था कि हमेशा घर में बन्द, गली में खेलना मना। कंजरों की तरह नाचने का मन होता तो दादी मां की घूरती आंखों से दुबका बैठा रह जाता।"[7] मोहन राकेश ने स्वयं लिखा हैं—"हमारे घर के पीछे कंजरों के घर थे और मैं भी उन्हीं की तरह नाचना चाहता था,किन्तु दादी मां मुझको उधर झाँकने तक नहीं देती थी। कहती थी वह घर कंजरों का है। मुझे कंजर अच्छे लगते हैं। मैं खुद उनकी तरह नाचना चाहता हूँ मगर दादी माँ घूर कर देखती तो कंजर बनने का सारा उत्साह गायब हो जाता है।"[8] अपने बचपन में उन्होंने विपुल निषेधों को आत्मसात किया। अपनी डायरी उनकी सहज प्रतिक्रिया यहाँ देखने योग्य है—और उस रिवाज का पालन करने में मुझको काफी कोत्क का अनुभव होता हैं, क्योंकि मेरा जन्म एक तंग शहर की छोटी सी गली के बहुत अँधेर घर में हुआ हैं जो देवदारों से लदे हुए उन पहाड़ी प्रदेशों में पैदा हुए, जहाँ गिरते हुए झरनों ने उनकी विस्मित शिशु आँखों को सौंदर्य से भर दिया था।"[9] 1941 ई0 में करमचन्द जी की मृत्यु के उपरान्त मोहन राकेश गण्डावाला मकान छोड़कर परिवार के साथ लाहौर आकर बस गये।

शिक्षा—दीक्षाः—मोहन राकेश प्रारम्भ से ही होनहार एवं प्रतिभाशाली छात्र थे। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अम्रतसर में प्राप्त की। 1941 ई0 में पिताजी की मृत्यु के पश्चात लाहौर में ऑरिएन्टल कालेज से संस्कृत शास्त्री की परीक्षा तथा संस्कृत विषय में एम.ए. की परीक्षा पास की। विद्यार्थी जीवन में आर्थिक विपन्नता और मानसिक तनाव को झेला। 1952 ई0 में पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास की।[10]

वैवाहिक जीवनः—मोहन राकेश का दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं रहा। उन्होंने लिखा है "मैंने जिन्दगी में जिस—2 से शादी करनी चाही, नहीं कर सका और जिन—जिन से नहीं चाही उनसे हुई।"[11] उनकी वैवाहिक स्थिति के बारे में कमलेश्वर ने बताया है कि—"राकेश के रेगिस्तान से एक आवाज आया करती थी। रेगिस्तान में घर कैसे बनाये जाते हैं? रेत का ही सही लेकिन एक घर तो होना ही चाहिए, उसने कई घर बनाये पर उसे उसके मन का घर किसी ने बनाकर नहीं दिया।"[12] मोहन राकेश के विवाह के बारे में विवाह सम्बन्धी प्रसंग पर वे बड़े भयभीत हुए। अपनी इस डांवाडोल स्थिति को उन्होंने 'ब्याह कर ही लूँ' निबंध में चित्रित किया है। जो सन् 1947 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ।"[13]

मोहन राकेश वैवाहिक जीवन में भी प्रायः स्वच्छन्दतावादी ही अधिक रहे है। उनकी पलायनवादी—घुम्मकड़ प्रवृति तथा नितान्त स्वच्छन्दतावादी दृष्टियों ने उनमें जीवन को एकदम बेहतरीब सा बनाकर रख दिया। राकेश के आलोचकों की प्रतिक्रिया थी कि राकेश किसी बंधन को स्वीकार नहीं कर सकते, "राकेश किसी बंधन को स्वीकार नहीं कर सकते। न व्यक्ति का, न स्थान का, न नौकरी का। कपड़े बदलने की तरह उन्होंने बीबीयाँ बदली, घर उन्हें डराता रहा और रेस्तराओं तथा डाक बंगलों की जिन्दगी रास आती रही।"[14] "जो लोग मानव मन की इस घुटन को नहीं समझते कि जिस औरत से प्यार नहीं, उसके साथ जिन्दगी कैसे गुजारी जाये, वे निश्चय ही इस पर शीला की भाँति 'वासना से चालित' और 'इन्सानियत से गिरा हुआ' होने का आरोप लगायेगें।"[15]

इन आरोप—प्रत्यारोपों के मध्य अपने हम दम की वकालत करते हुए कमलेश्वर कहते है, "सबसे बड़ा इल्जाम उस पर यह है कि वह टिकता नहीं। वह निहायत गैर—जिम्मेदार और अनुशासनहीन व्यक्ति है। डाक बंगले में रहने को ही जिन्दगी समझता है।"[16] मोहन राकेश का प्रथम विवाह सन् 1950 में हुआ तथा पत्नी के अंहकारी स्वभाव ने इस विवाह को सम्बन्धविच्छेद तक पहुंचाया। सन् 1960 में राकेश ने अपने मित्र की बहन पुष्पा से दूसरा विवाह किया। जो मानसिक रूप से लगभग विक्षिप्त थी।[17] पहली पत्नी शीला के व्यक्तित्व से इसका व्यक्तित्व भिन्न था। पहले हठ था, अहम था अब दीनता थी, विनय थी, दावा पहले भी था, अब भी वहीं मैं आपके बिना नही रह सकती। इस बार भी राकेश फेरे लेने से पहले ही अनमने हो गये थे।[18] इस प्रकार राकेश जी घर बसाते गये और उजड़ता गया। मोहन राकेश के मित्र कमलेश्वर ने लिखा है "उसे घर का सुकून नहीं मिला जो जिन्दगी को एक नया अर्थ देता है, जिसे आदमी मरते दम तक अपना कहता है और जीता है, जिसके लिए मौत से जुझता है और सारी

परेशानियों के बाद सुख से रहता है।[19] एक घर तो होना ही चाहिए, उसकी अदम्य इच्छा थी। इसीलिए दो–दो असफल विवाह साथ ही यह मान्यता कि विवाह मानवीय असफलता की सीढ़ी है, के बावजूद भी राकेश एक घर प्यार और आत्मीयता के भरपूर अहसास की खोज में बार–बार विवाह–बन्धन में बँधता गया और इस सघंर्ष की समाप्ति हुई अनीता के जीवन में आने पर 22.7.1963 के दिन।"तुम तो मुझे छोड़कर नहीं जाओगी ने कभी?"[20] इस सहज वाक्य ने उनके जीवन की वह अनकही व्यथा प्रस्तुत कर दी जिसे छिपाते हुए वे अनेक स्थानों पर भटकते रहे, लेकिन बचपन का अशांत मन अनीता को प्राप्त करने के बाद में भी शांत नहीं हुआ। मोहन राकेश का घर में लिखना मुश्किल हो गया था। यद्यपि कमरे का एकान्त तो उन्हे मिल गया लेकिन रूह का एकान्त उन्हें नहीं मिलता था। उन्होंने 'अनीता राकेश कि यादों के एकान्त क्षण' आलेख में उनके सवांद–

"मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।" / "कहो।" / "तुम्हारा स्थान तीसरा है।" / "नहीं, जो तुम सोच रही हो मेरा मतलब उससे नहीं है। मेरा मतलब है–पहले नम्बर पर मेरा लेखन है, दूसरे नम्बर पर मेरे दोस्त और तीसरे नम्बर पर तुम हो, लेकिन तीनों मेरे लिए बहुत जरूरी है।" अनीता की इच्छा थी कि वह घर का बनकर रहे। उसने राकेश को भरपूर प्यार दिया, लेकिन मन का चैन ना इस तरह, ना उस तरह। राकेश अत्यधिक प्यार से व्याकुल हो गए और सोचने लगे अनीता के दिमाग का डाइवर्जन कराने की आवश्यकता है। राकेश तो महफिल परस्त थे, लेकिन अनीता–रोज इस उम्मीद में बैठी जागती रहती कि हो सकता है आज महफील ना लगे। लेकिन उसकी नौबत ही नही आती। पहले जैसे ही कुछ क्षण भी राकेश के साथ अपनी मर्जी से काटने को मिलते थे। राकेश का यह पारिवारिक यथार्थ 'आधे–अधुरे' में झलकता है। राकेश ने कभी अपने को दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार ढालने का प्रयत्न नहीं किया, इसे वे केवल आत्मघात की प्रक्रिया मानते हैं, जो जीवन भर चलती रहती है।[22]

व्यवसायः–मोहन राकेश की प्राथमिकता आमजन के समान ही रोटी, कपड़ा और मकान ही रही। इसके लिए पिताजी की मृत्यु के उपरान्त राकेश जी संघर्षरत रहे। उन्होंने जीविकोपार्जन के लिए सर्वप्रथम अध्यापन को ही अपनाया। सन् 1941 ई0 में राकेश जी ने लाहौर की एक फिल्म कम्पनी के लिए 550/रु0 मासिक वेतन में कहानीकार के रूप में नौकरी की। 1945 ई0 में राकेश जी ने इस्तीफा दे दिया। यह उनके जीवन का प्रथम इस्तीफा था। इसके उपरान्त घर की जर्जर दयनीय अवस्था के चलते एलफिस्टन कालेज बम्बई में हिन्दी व्याख्याता का पद ग्रहण करके दूसरी नौकरी प्राप्त की।

लेकिन कमजोर आंखों के कारण 1949 ई0 में व्याख्याता पद से इस्तीफा दे दिया। सन् 1950 से 1954 ई0 तक के समय को उन्होंने उथल–पुथल का समय कहा है। [25] इसके उपरान्त राकेशजी डी.ए.वी. कालेज, जालन्धर में प्राध्यापक बन गये। मोहन राकेश की जिन्दगी बिखरावों से भरी पड़ी थी। स्वयं राकेश जी का मानना है कि,"कुछ लोगों की जिन्दगी में बिखराव बहुत होता है। मैं अपने को ऐसे ही लोगों में पाता हूँ। बिखरना और बिखेरना मेरे जितना स्वाभाविक है, सम्भलना और समेटना उतना ही स्वाभाविक।"[23] अनीता राकेश ने उनके चरित्र को उकेरते हुए लिखा है कि,"बाहर से राकेश जी जितने सीधे और सरल दिखते थे, उतने वास्तव में थे नहीं। उन्हें अन्दर तक समझना एक बड़ी तपस्या थी। वे बाहर से जितने इन्फार्मल थे, उतने ही ज्यादा मन में फार्मल।"[23] शिमला मिशनरी स्कूल में अध्यापन के समय वे स्कूल की घंटी और रूटीन से वे घबराते थे। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि "प्रभु ईसा को कभी नौकरी नहीं करनी पड़ी वरना सारा टैस्टामैण्ट ही बदल गया होता.........सात पीरियड....... पढ़ा सकते थे ईसा मसीह? इतने पीरियड, इससे कहीं आसान था क्रास कंधे पर लेकर चलना।"[24]

1952 ई0 में स्कूल से इस्तीफा देकर कुछ समय पश्चात् डी.ए.वी. कालेज जालंधर में हिन्दी विभागाध्यक्ष का पद ग्रहण किया। 31.12.1957 को इस पद से इस्तीफा देकर कुछ समय दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। अध्यापन की घुटन भरी जिन्दगी त्यागकर मुम्बई में रहकर सारिका का सम्पादन किया। अतः मोहन राकेश ने अपने व्यावसायिक जीवन को अस्थिरता पूर्ण व्यतीत किया। "एक और इस्तीफा मोहन राकेश की जेब में हमेशा पड़ा रहता था, तो दूसरी ओर नौकरियां भी उनकी देहरी पर प्रतीक्षारत रहती थी।"[25]

साहित्य के प्रति आकर्षण–राकेश जी उच्च कोटी के विद्वान एवं साहित्यकार थे। उनको लेखन प्रतिभा पैतृक जायदाद के रूप में मिली। पिताजी की मृत्यु के उपरान्त लम्बे संघर्ष एवं परिस्थितियों ने उनकी साहित्यिक प्रतिभा को निखार दिया। डॉ. कमलेश्वर ने लिखा है,"कितनी बेहतरीन जिन्दगी है मेरे यार की पर सतय से नीची उतरते ही जबरदस्त अनुशासन दिखाई देता है। वह अनुशासन है दिमाग का और सर्जन का। ऊपरी जिन्दगी में वह जितना असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है उतनी ही संगठित और सुव्यवस्थित है उसमें लेखन कि प्रक्रिया। जितनी बेहतीबी

से मसल मसलकर वह सिगरेट के टुकड़े जगह–जगह फेंकता है उतने ही करीने ढंग से वह अपने विचारों और अनुभवों को सजाता है।"[26]

"शैशव की स्वप्निल उड़ानों का स्थान अब प्रश्नाकुल मानसिकता लेने लगी थी। उनकी एक दृष्टि विकसित होने लगी थी और उन्होंने अपना जीवन उसी के अनुसार जीया। अपने ही द्वन्द्वों में लेकिन पूरी सच्चाई के साथ। छलकपट या धोखें कही नहीं, घरेलू जीवन में भी नहीं। यदि लेखन के वक्त किसी को टरका भी दिया तो शाम होने से पहले उसे यह झूठ बता देना भी वे जरूरी समझते थे। उन्हें यदि किसी दूसरे का घटियापन पसंद नहीं था तो अपना घटियापन भी दो कदम उनके साथ नहीं चल सकता था।" अतः निराला के बाद हिन्दी साहित्य में जिस व्यक्ति के चारों ओर सबसे ज्यादा 'मिथ' बुनी गई तो वह हैं –मोहन राकेश।

मृत्युः–3 दिसम्बर 1972 को यह साहित्य का देवता चिरनिद्रा में लीन हो गया। यद्यपि मृत्यु चंगुल ने उसको सदा के लिए दबोच लिया परंतु उसकी अन्तरात्मा की तड़प अब भी हिन्दी जगत को सुनायी देती है।

कृतित्व–मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार है, उन्होने हिन्दी–साहित्य की विद्या को भी चाहे वह नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, ललित–निबन्ध या यात्रा–वृतान्त हो, सभी में संजीवनी शक्ति भर दी। सभी को नये प्रयोग के धरातल पर रूपायित किया है। वैसे तो राकेश की रचना संसार वैविध्यपूर्ण है परन्तु नाटक के क्षेत्र में उनकी देने अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अग्रगण्य नाटककारों में अपना स्थान सुरक्षित करते हुए उन्होंने पर्याप्त मात्रा में ख्याति अर्जित की है। उनहोंने हिन्दी नाटक को जो नयी दिशा और मोड़ दिया है, वह अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। उन्होने अपने नाटकों में परम्परागत और वस्तु विन्यास का परित्याग करके, घटनाक्रम के स्थान पर परिवर्तन, स्थितिसर्जन के सहारे कथानक को गति प्रदान की लेकिन उनकी सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि उन्होने हिन्दी नाटक की साहित्यिकता को पूरी तरह प्रबुद्ध एवं समृद्ध मंच चेतना में ढ़ाल दिया। नाटकों को रंगमंच के साथ जोड़ने में राकेश की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनका रचना संसार निम्नवत् है–

नाटक	उपन्यास
1. आषाढ़ का एक दिन 1950	1. अन्धेरे बन्द कमरे 1961
2. लहरों के राजहँस 1963	2. न आने वाला कल 1970
3. आधे–अधुरे 1969	3. अन्तराल 1973
4. पैर तले की जमीन 1982	4. स्याह और सफेद प्रकाश्य
5. काँपता हुआ दरिया प्रकाश्य	6. कई एक अकेले प्रकाश्य

कहानी संग्रह–
1. इन्सान के खण्डहर (1950)
2. नये बादल (1957)
3. शनवर और जानवर (1958)
4. एक असैर जिन्दगी (1961)
5. फौलाद का आकाश (1966)
6. मेरी प्रिय कहानियाँ (1971)
7. चेहरे (1966)
8. क्वार्टर (1972)
9. वारिस (1972)

एकांकी सग्रह
1. अण्डे छिलके 1973
2. रात बीतने तक (1974)

लेख–निबन्ध–
1. परिवेश (1967)
2. बकलम खुद (1974)

यत्रावृत्त–आखिरी चट्टान तक
जीवनी–समय सारणी
बालसाहित्य–बिना हाँड माँस के आदमी 1974
सम्पादन–आइने के सामने
डायरी–व्यक्तित्व 1986

'आधे अधूरे' का शिल्प विधान–प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा लिखे गये नाटकों की संख्या अधिक नहीं है लेकिन इनमें से 'आषाढ़ का एक दिन, 'लहरों के राजहँस' और 'आधे अधुरे' अपनी रंग–धर्मिता, गुणवता और गुणात्मकता की दृष्टि से श्रेष्ठ कहे जा सकते है। डॉ0 प्रतिभा अग्रवाल का कहना है –'आधे–अधूरे ने उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया है।' 'आधे–अधूरे' एक सामाजिक नाटक है जबकि पहले दोनों नाटक–'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' ऐतिहासिक नाटक है। इसमें नाटककार ने एक नव्य प्रयोग भी किया है क्योंकि इसमें पात्रों का नामकरण नहीं है, वे नाम के होकर भी अनाम है, जैसे– स्त्री, पुरूष, एक स्त्री, चार पुरूष, बड़ी लड़की, छोटी लड़की पात्र यहां उसी रूप में प्रयुक्त हुए है। प्रस्तुत नाटक–परिवार की आकांक्षाओं, तृष्णाओं और लगावों व तनावों की कहानी है, पारिवारिक विघटन की गाथा है जिसमें प्रत्येक पात्र एक दूसरे को बोझ, एक दूसरे से कटा–कटा अनुभव करता है।[27]

'आधे–अधूरे' नाटक दो कारणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है–एक तो इस नाटक में राकेश जी ने नव्य प्रयोग किये है अर्थात् यह नाटक प्रयोगशील रंग चेतना से युक्त है दूसरा उसमें आधुनिक मानव को यातनापूर्ण स्थिति को परिवार जैसी सामाजिक संस्था के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक आधार पर अंकित करने की चेष्टा की गई है। सामान्यता नाटक के सात प्रमुख तत्व स्वीकारे जाते हैं–कथावस्तु, पत्र एवं चरित्र चित्रण,

कथोपकथन, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य एवं अभिनेयता।[28]

कथावस्तु–प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु सामाजिक है और राकेश जी ने इसमें एक महानगरीय परिवार की सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक स्थितियों का अति यथार्थपूर्ण एवं सजीव–मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि पति–पत्नी के तनावपूर्ण, असंगत–संबंधों और व्यर्थता की स्थितियों ने बच्चों पर कितना भयंकर–विनाशकारी प्रभाव डाला है–नाटक में वर्णित महेन्द्रनाथ एक असफल व्यापारी है और व्यापार में धन गवाने से अब परिवार की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी है। पत्नी अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु पर–पुरूष में पूर्णता की खोज करने लगी तथा अनेक पुरूषों से संबंध बन गये। कभी वह जुनेजा में, कभी शिवजीत में, कभी जगमोहन और कभी सिंघानियाँ में पूर्णता की खोज करने लगे लेकिन सब आधे–अधूरे। बड़ी लड़की भी अपनी प्रौढ़ा माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग गयी लेकिन उसका दाम्पत्य जीवन भी सुखमय नहीं है और वह यदा–यदा भाग कर माँ के पास आ जाती है। लड़का अशोक भी अपने बाप महेन्द्रनाथ की भाँति बेकार–बेगार और सारा दिन अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटता रहता है और उद्योग सैन्टर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटकाता फिरता है। छोटी लड़की आयु से अधिक परिपक्य है तथा घर के के फुहड़ वातावरण के कारण यौन संबंधों में रूचि लेती है। महेन्द्रनाथ की उपेक्षा के कारण एक भरा पूरे परिवार को सामाजिक स्तर की भूख ने धूल घूसरित कर डाला। कथावस्तु मौलिक, संक्षिप्त और रोचकता के गुण से युक्त है तथा इसे अन्तरः विकल्प नाम देकर दो अंकों में विभक्त कर डाला है। इस संपूर्ण कथावस्तु में केवल एक ही दृश्यबन्ध है तथा नाटक का आदि, मध्य और अंत स्पष्ट है।[29]

पात्र और उनका चित्रण–पात्र एवं चरित्र चित्रण नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है क्योंकि नाटक के महत्वपूर्ण पात्र हैं क्योंकि नाटक के अन्य सभी तत्व पात्रों के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाते है। आधे–अधूरे के सभी पात्र जीवन्त, आकर्षक और स्वाभाविक है। इस नाटक में कुल दो पुरूष पात्र है तथा चार पुरूषों कि भूमिका में केवल एक ही पुरूष अभिनय करता है। तीन स्त्री पात्र है–सावित्री, बिन्नी और किन्नी। पात्रों के चरित्रांकन में राकेश ने यथार्थता से ही काम लिया है। ये पात्र ऐसे है जिन्हें हम रोजमर्रा के जीवन में अपने आस–पास रोज–रोज देख सकते है। महेन्द्रनाथ घर का मुखिया है लेकिन व्यापार में असफल हो जाने के कारण तथा रूपया गंवा कर जब बेकार–बेकार हो चला है और पत्नी की कमाई पर पल रहा है। पत्नी के पुरूष–मित्रों की आलोचना करके अपने अधूरेपन को छिपाने में लगा रहता है। घर पर बैठा अखबार पढ़ता रहता है और चाय बनाकर पीता रहता है तथा फाईलों में बंधी अपनी जिन्दगी टटोलता रहता है। सावित्री जी तोड़ परिश्रम करके अपने निठल्ले पति और उद्दण्ड बालकों का भरण पोषण करती है तथा अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति हेतु पर–पुरूषों के सम्पर्क में आती है लेकिन वे सभी पुरूष भी महेन्द्रनाथ की तरह अपूर्ण पाते है–सबके सब...... सबके सब एक से। बिल्कुल एक से है आप लोग। अलग–अलग मुखौटे, पर चेहरा? चेहरा सबका एक ही।[30] इस प्रकार स्त्री–पुरूष के संबंधों में रिक्तता, तनाव और अलगाव बोध आ जाता है। अन्य तीनों पात्रों में अशोक, बिन्नी और किन्नी भी अपने–अपने व्यक्तित्वों में अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा कथावस्तु को अग्रसर करने में सहायक है। अशोक भी अपने पिता के समान भावुक, जन्दबाज और बेकार है तथा घर पर बैठा सारा दिन अभिनेत्रियों की तस्वीरे काटता रहता है। न वह पढ़ाई पूरी कर सका और न नौकरी में मन लगा सका। अतः स्पष्ट है कि अशोक ठीक महेन्द्रनाथ का प्रतिनिधि एवं कल का महेन्द्रनाथ है। बिन्नी सावित्री के अनुरूप है तथा उसकी बड़ी बेटी है तथा अपनी माँ की गृहस्थी की भांति उसका दाम्पत्य जीवन भी सुखमय नही है। माँ के साथ वह गहरे रूप से जुड़ी हुई है। किन्नी तेरह–चौदह वर्षीय बालिका है तथा आयु से अधिक परिपक्व अवस्था में है और यौन संबंधों में अधिक रूचि लेती है। उसके मन में माता–पिता, भाई–बहन किसी के भी प्रति न तो श्रम–आदर है और न ही आत्मीयता या लगाव।अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि पात्र और चरित्र चित्रण की दृष्टि से आधे–अधूरे एक सफल नाटक है।

संवाद अथवा कथोपकथन–'आधे–अधूरे' नाटक में संवाद एक ओर तो पात्रों और उनके वर्गो से सीधे जुड़े हुए है तो दूसरी ओर वर्ण्य–विषय के भी सर्वथा अनुकूल है। प्रस्तुत नाटक के संवाद–संक्षिप्त रोचक, पात्रानुकूल है और वे अभिनयात्मक, संक्षिप्त, चुस्त एवं प्रवाहशील है। संक्षिप्तता इस नाटक के संवादों का सबसे बड़ा गुण है। कुछ संवाद तो अत्यंत लघु आकार के है और कुछ बड़े–बड़े संवाद। संवादों के बारे में डॉ0 पुष्पा बन्सल का कहना है–आधे–अधूरे के संवाद आकार की दृष्टि से दो भागों में बांटे जा सकते है, एक अतिलघु तीखे संवाद एवं दूसरे बड़े–बड़े विश्लेषणात्मक संवाद। लघु संवाद पैने अस्त्रों के समान उठकर तेजी से गहरा वार करते है। वे बिजली के समान चमकते है और कौंधकर विलीन हो जाते है। लम्बे आकार के संवाद जैसे आकाश में मेघ घिरने शुरू हो–पहले छोटा साथ धब्बा फिर देखते ही वह फैलकर सारा आकाश ढक ले। ये संवाद पात्रों के

मानसिक अभाव, बेचैनी, त्रास, कुंठा और अधूरेपन को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। इस नाटक में पूर्ववर्ती नाटकों की अपेक्षा संवादों की गति को ज्यादा महत्व दिया गया है। डॉ0 गिरीश रस्तोगी का कहना है–ये संवाद कहीं अधूरे–अस्फुट है कहीं पूरे–पूरे लम्बे है, कहीं एकदम छोटे, कही पृष्ठभर एक ही व्यक्ति बोलता जाता है तो कहीं दो पात्रों के संवादों में विरोधात्मक स्थितियाँ है तो कहीं एक–दूसरे से जुड़ते–फिसलते संवाद। नाटक के अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने में संवादों के अलग–अलग रूप बड़े सहायक हुए है। संक्षिप्त संवाद योजना का उदाहरण देखिए–

लड़का : कौन आने वाला है? / बड़ी लड़की : ममा का बास–क्या नाम है उसका? / लड़काः अच्छा–वह आदमी। / बड़ी लड़की : तू मिला है उससे। / लड़का : दो बार / बड़ी लड़की : कहाँ? / लड़का : इसी घर में।[31] पात्रों के संवाद एक ओर तो उनके चरित्र प्रकाशन की क्षमता से युक्त है तो दूसरी तरफ मनोरजंकता–व्यंग्यात्मकता से भी युक्त है। उनके संवादों में निरर्थक प्रसंग, अर्थहीन या अस्पष्टता कभी नहीं मिलेगी क्योंकि उनके सवांद कथा–विकास से अधिक चरित्र से बंधे हुए है। अतः स्पष्ट है कि आधे–अधूरे की संवाद योजना सफल और सार्थक है।

देशकाल–वातावरण–मोहन राकेश ने अपने नाटकों में कथानक के अनुकूल देशकाल वातावरण का सुन्दर और सजीव चित्रांकन किया है। उन्होंने इसमें देशकाल–वातावरण का सजीव चित्रांकन हेतु महानगरीय संत्रास बोध, बिडम्बनाओं, मध्यवर्गीय पारिवारिक तनाव का चित्रण किया है। प्रस्तुत नाटक के वातावरण की सजीवता के बारे में रंग–शिल्पी ओम शिवपुरी का कहना है – 'एक दिग्दर्शक की दृष्टि से आधे–अधूरे मुझे समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक लगता है। यह मौजुदा जीवन की विडम्बना के कुछ एक सघन बिन्दुओं को रेखांकित करता है। इसका पात्र गठन सुदृढ एवं रंगोपयुक्त है। लेखक ने बाह्या वातावरण के निर्माण में रंग–निर्देशकों के माध्यम से बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है जैसे–मध्य वितीय स्तर से होकर निम्न–मध्य–वितीय स्तर पर आया एक घर। सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला वह कमरा जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर में टूटते अवशेष–सोफासेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और ड्रेसिंग टेबल आदि किसी न किसी तरह अपने लिए जगह बनाये है। जो कुछ भी है, वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक ओर ही अनुपात से है। एक चीज का दूसरी चीज से रिश्ता तात्कालीक सुविधा की मांग के कारण टूट चुका है। फिर भी लगता है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गई है–बल्कि कुछ असुविधाओं ने ही सुविधा खोजने की कोशिश की गई है।' आन्तरिक वातावरण की सृष्टि भी नाटककार ने अनेक रूपों में कि है जैसे कहीं तो घटनाओं अथवा परिस्थितियों का मार्मिक वर्णन करके और कहीं पात्रों की मानसिकता का चित्रांकन करके आन्तरिक वातावरण का चित्रण किया है। पात्रों द्वारा मानसिकता वातावरण का निर्माण भी सुन्दर बन पड़ा है। नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में एक ओर तो आधुनिक मध्यवर्गीय निम्न वितीय परिवार का यर्थाथ चित्रण किया है तथा साथ ही उनकी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का भी मार्मिक चित्रण किया है। नाटककार ने महेन्द्रनाथ के परिवार के खान–पान व वेशभूषा का भी यथार्थ चित्रण किया है। अतः स्पष्ट है कि देशकाल की दृष्टि से आधे–अधूरे एक सफल नाटक सिद्ध होता है।

भाषा शैली–नाटक के क्षेत्र में वही भाषा सर्वाधिक श्रेष्ठ मानी जाती है जो सर्वथा रंगमंच के अनुकूल और उपयुक्त हो। आधे–अधूरे नाटक की भाषा दैनिक प्रयोग में होने वाली हिन्दी–उर्दू–अंग्रेजी मिश्रित आम बोलचाल की भाषा है। इसलिए इस नाटक की भाषा सरल, सजीव व जीवन्त है। डॉ0 गोविन्द चातक का कहना है–'आधे–अधूरे भाषा की दृष्टि से राकेश का अन्यतम प्रयोग है। इस नाटक की भाषा नाटक के क्षेत्र में वर्षों से व्याप्त जड़ता को भंग करने में सफल हुई है। इसमें जो सहजता, ताजगी, लोच और चालूपन है, वह नाट्य भाषा की सम्पूर्ण संभावनाओं और आन्तरिक शक्तियों का उपभोग करता दिखता है।' श्री ओम शिवपूरी का कहना है–'कहना न होगा कि इस नाटक को एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है।' इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन उनका संयोजन सब कुछ ऐसा है जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्ति करता हैं। लिखित शब्द की यही शक्ति और उच्चरित ध्वनि–समूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य रचना बन्द और खुले दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाये रख सकी।' इस नाटक की भाषा में नाटककार ने अपने पूर्ववर्ती नाटकों की भाँति जटिल प्रतीकों को स्थान नहीं दिया है बल्कि इस जटिल प्रतीकों को स्थान नहीं दिया है बल्कि इस नाटक के प्रतीक और संकेत अत्यंत सहज–सरल और संकेत अत्यंत सहज–सरल और व्यंजनापूर्ण है। अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक की भाषा सरल–सहज और आम बोलचाल की होते हुए भी इसका अपना सौष्ठव एवं रस है तथा गहन अभिव्यंजना की पूर्ण क्षमता विद्यमान है। वास्तव में यह भाषा सीधी रंगमंच से जुड़ी हुई है। भाषा शैली की दृष्टि

से भी प्रस्तुत नाटक एक सफल—सार्थक नाटक एक सफल—सार्थक नाटक है और इस दृष्टि से एक सशक्त नवीन प्रयोग है।

उद्देश्य—आधे—अधूरे नाटक आज के शहरी क्षेत्र के मध्यवर्गीय पारिवारिक जिन्दगी के विसंगति को दोहराना चाहता है। सावित्री नाटक की नायिका और महेन्द्रनाथ नाटक का नायक है। महेन्द्रनाथ एक असफल व्यापारी है तथा पहले उसका परिवार एक समृद्ध परिवार था लेकिन असफल होने के बाद वह घर में बेकार होने के बाद वह घर में बेकार बैठा है और पत्नी सावित्री की कमाई पर आश्रित है। सावित्री अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति हेतू अनेक परपुरूषों के सम्पर्क में आती है परन्तु उसकी इच्छाओं की पूर्ति नही हो पाती। पूरा परिवार पतन के गर्त में गिर जाता है—लड़की बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है परन्तु उसका वैवाहिक जीवन भी सुखद नहीं है। लड़का अशोक महेन्द्र की तरह बेकार—बेगार है और सारा दिन अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटता रहता है और वर्णो के पीछे जूतियाँ चटखाता है। किन्नी अपरिपक्व अवस्था में है लेकिन यौन संबंधों में रस लेती है। लेखक स्पष्ट करता है कि आर्थिक महत्वकांक्षाओं की पूर्ति हेतु किस प्रकार एक भरा पूरा परिवार धूल धूसरित हो जाता है। अतः आधे—अधूरे एक परिवार की आंकाक्षाओं, तृष्णाओं और लगावों व तनावों व तनावों की कहानी है, पारिवारिक विघटन की गाथा है जिसमें प्रत्येक पात्र एक दूसरे को बोझ, एक दूसरे से कटा—कटा अनुभव करता है। वैसे मध्यवर्ग की मानसिकता को राकेश जी ने भली भाँति परखा और हर प्रकार की टूटन। इस प्रकार आधे—अधूरे मध्यवर्गीय परिवारों के टूटन की कहानी है।

अभिनेयता—नाटक और रंगमंच का चोली—दामन का संबंध है। नाटक की सफलता ही रंगमंच पर आश्रित होती है। यदि नाटक रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेला नहीं जा सकता तो वह नाटक कहलाने का अधिकारी नहीं। आधे—अधूरे एक सफल अभिनेय नाटक है क्योंकि इस नाटक की कथावस्तु सहज, सरल, संक्षिप्त और सम्प्रेषणीय है। प्रस्तुत नाटक के संवाद भी छोटे—छोटे, चुस्त, प्रवाहपूर्ण और रंगमंचीय है। नाटककार ने साथ में पर्याप्त मात्रा में रंग—संकेत या रंग—निर्देश दिये है जिससे कि नाटक का सफलतापूर्वक मंचन किया जा सके। उन्होंने प्रकाश—ध्वनि आदि के लिए उचित निर्देश दिये हैं। नाटककार द्वारा दिये गये भरपूर मात्रा में रंग संकेतों को देखकर श्री महेश आनन्द यह कहने के लिए बाध्य है— 'इस नाटक की सफलता का सबसे बड़ा कारण नाटककार की रंग—चेतनों है जो सारे नाटक में छायी हुई है। राकेश ने इस यथार्थवादी' रंगमंच को एक नया और आकर्षकरूप दिया है लेकिन किसी भी तरह की चकाचौंध को अपनाकर रंगमंच के अन्तर्हित तक को पराजित करने का प्रयास नहीं किया।'

अन्त में यहीं कहा जा सकता है कि आधे—अधूरे आधूनिक नाटक के तत्वों की कसौटी पर खरा उतरता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. कमलेश्वर—मेरा हमदम मेरा दोस्त : मोहन राकेश, पृ. 8 2. डॉ. एस. के. मंगल—शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान पृ. 339 3. रविन्द्र कुमार शर्मा—शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान पृ. 220 4. वही पृ. 221 5. राहुल गर्ग—आधे अधूरे—एक विवेचन पृ. 2 6. वही पृ. 2 7. वही पृ. 2 8. मोहन राकेश—आइने के सामने, पृ. 86 9. मोहन राकेश की डायरी, पृ. 6 10. राहुल गर्ग—आधे अधूरे—एक विवेचन पृ. 2 11. अनीता ओलक—यादों के एकान्त क्षण, पृ. 9 12. मोहन राकेश की डायरी : कमलेश्वर, भूमिका पृ. 12 13. मोहन राकेश : निबंध—ब्याह कर ही लूँ, सारिका पृ.67 14. गोविन्द चातक : आधूनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश, पृ. 26 15. मोहन राकेश की डायरी, पृ. 35 16. कमलेश्वर—मेरा हमदम मेरा दोस्त : मोहन राकेश की श्रेष्ठ कहानियां 17. राजेन्द्रलाल : अंर्तविरोधी व्यक्तित्व : नाटककार मोहन राकेश पृ. 26 18. राजेन्द्रलाल : अंर्तविरोधी व्यक्तित्व : नाटककार मोहन राकेश पृ. 26 19. मोहन राकेश की डायरियां : कमलेश्वर पृ. 12 20. सारिका मार्च 1973 पृ. 60 21. अनीता राकेश चन्द सतहे और पृ. 76 22. नटरंग 10—11, पृ. 14 23. मोहन राकेश—परिवेश, भूमिका 24. मोहन राकेश की डायरियां, पृ. 24 25. श्रीकान्त—अणिमा 26. डॉ. राजेश शर्मा—लहरों के राजहंस, समीक्षा, पृ. 4 27. सारिका मार्च 1973 पृ. 11 28. राहुल गर्ग—आधे अधूरे—एक विवेचन, पृ. 74 29. वहीं, पृ. 75 30. वहीं, पृ. 75 31. मोहन राकेश—आधे अधूरे, पृ. 93 32. राहुल गर्ग—आधे अधूरे—एक विवेचन, पृ. 18